International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 07-03-2025, Accepted: 06-04-2025, Published: 22-04-2025
Volume 11, Issue 2, 2025, Page No. 19-22

# हिन्दी निबंध और राष्ट्रवाद की संकल्पना (निबंधकार बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र के विशेष संदर्भ में)

**डॉ. महेन्द्र सिंह मीना**
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय करौली, राजस्थान, भारत

**सारांश**
हिन्दी निबंधकार बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र के निबंध राष्ट्रीयता संबंधी अवधारणा के साथ तत्कालीन इतिहास दृष्टि में मौजूद परंपरा और आधुनिकता, इतिहास और संस्कृति, धर्म और राष्ट्र के बीच के द्वन्द्व और संबधों को भलीभाँति उजागर करते हैं। भारतीय राष्ट्रवाद के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए जरूरी है कि हम यह समझे; कि नवजागरण के दौर में जाति, वर्ग एवं लैंगिक विषमताओं से युक्त भारतीय राष्ट्रीयता की परिकल्पना कैसे अलग–अलग खांचों में सामने आ रही थी। नवजागरणकालीन उक्त विषयों को ये दोनों निबंधकार किस रूप में देख रहे थे, यह जानना दिलचस्प है।
डॉ. नामवर सिंह अपने आलोचनात्मक लेख 'हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ' में भी इस सवाल को रखते हैं कि 'हिन्दी प्रदेश का नवजागरण हिन्दू–मुस्लिम दो धाराओं में क्यों विभक्त हो गया। जिस प्रदेश में हिन्दू–मुस्लिम दोनों धर्मों के लोग एक साथ मिलकर सन सत्तावन में अंग्रेजी राज के खिलाफ लड़े; वहाँ दस वर्ष बाद ही जो नवजागरण शुरू हुआ, वह हिन्दू–मुस्लिम दो अलग–अलग खानों में कैसे बंट गया।' इतिहास को किसी खास रंग–ढ़ंग में ढालकर देखने और संबंधित घटना–परिघटनाओं की व्याख्या करने से राष्ट्र का जो स्वरूप उभरता है, उसे समझने के लिए भी इन निबंधकारों की इतिहास दृष्टि की समग्र विश्लेषण जरुरी हो जाता है ।

**मूल शब्दः** हिंदी नवजागरण और भारतीय राष्ट्रवाद, हिन्दू बनाम मुस्लिम राष्ट्रवाद, हिंदी भाषा और साहित्य, अतीत उन्मुखता ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रथम कालखण्ड – भारतेन्दु युग को अनेक विद्वानों ने नवजागरण काल के रूप चिन्हित किया है। हिन्दी में नवजागरण के संबंध में दो धारणायें प्रचलित है– पहली धारणा डॉ. रामविलास शर्मा की है, जो इसे 'हिन्दी जाति' अर्थात हिन्दी भाषी प्रदेश के नवजागरण की साहित्यिक अभिव्यक्ति मानते है।' वहीं दूसरी धारणा में अधिकांश हिन्दी लेखक शामिल है; जिनके अनुसार यह 19वीं सदी के राष्ट्रीय नवजागरण की साहित्यिक अभिव्यक्ति है, जिसकी झलक पहले–पहल हिन्दी प्रदेश से दूर बंगाल, गुजरात एवं महाराष्ट्र में देखने को मिली। यहां दूसरी धारणा अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि हिन्दी प्रदेश में 19वीं के अंत तक किसी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, या सांस्कृतिक आंदोलन की शुरुआत नहीं हुई थी, जबकि बंगाल में राजा राममोहन राय, हेनरी विवियन डेरेजियो, श्रीमती ऐनीबेसेन्ट, गुजरात में दयानंद सरस्वती, महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबाराव फूले, केशव चंद्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, स्वामी विवेकानंद सरीखे अनेक समाज सुधारक हुए। इन्होंने अनेक सामाजिक और धार्मिक सुधार संस्थाओं जैसे– ब्रह्म समाज, आर्यसमाज, प्रार्थना समाज, सत्यशोधक समाज, थिओसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन आदि की स्थापना की। इन संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक क्षेत्र में जातिप्रथा की समाप्ति, छुआछूत और दासप्रथा अंत, साम्प्रदायिकता का विरोध, बाल और वृद्ध विवाह का विरोध, बहुपत्नी प्रथा, अनमेल विवाह, परस्त्रीगमन, वेश्यावृति, कन्या शिशु हत्या, पर्दा प्रथा, सतीप्रथा, मदिरापान आदि कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई। स्त्रियों के लिए समानाधिकार, स्त्री शिक्षा के प्रचार प्रसार की बात की जाने लगी। धार्मिक क्षेत्र में अन्धविश्वास तथा मूर्तिपूजा का विरोध, बहुदेववाद का खण्डन, तीर्थ–व्रत और श्राद्ध की व्यर्थता, जादू–टोना, झाड़–फूंक की समाप्ति हेतु अनेक आंदोलन चलाये। राष्ट्रीय स्तर पर विलासतापूर्ण सामन्ती जीवन की आलोचना, पक्षपातपूर्ण न्यायायिक व्यवस्था का बिरोध, स्वदेशी का प्रचार–प्रसार, शैक्षणिक व्यवस्था में सुधार, समानता की मांग करने के साथ स्वाधीनता की चेतना के फैलाव में उपर्युक्त संस्थाओं ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

नवजागरण के दौर में सबसे चर्चित बिन्दू 'राष्ट्रवाद' था। यूरोप में इस विचारधारा का उदय शिथिल होते राजतंत्र और प्रजातंत्र की बढ़ती लोकप्रियता के साथ हुआ। भारत के लिए उस समय राष्ट्रीयता एक नव विचार था। इस सिद्धान्त के अनुसार 'प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अंश है और उस राष्ट्र की सेवा में, उसे हर संभव तरीके से समृद्ध बनाने के लिए तथा प्रत्येक नागरिक को सुखी जीवन मुहैया कराने के लिए, व्यक्ति को सभी प्रकार के त्याग और कष्ट स्वीकार करने चाहिए।' उच्चतर उद्देश्यों के अनुकूल यह विचार भी सीमा व्यतिक्रम की दशा में कुत्सित नजर आता है। अपने देश के प्रासादों को संवारने के लिए दूसरे देश की झोंपड़ियां जलाने की स्वीकृति इस विचार में नजर आती है। ब्रिटिश राष्ट्रवाद इसी नीति पर आधारित था। भारतीयों में राष्ट्रवाद की यह भावना देशभक्ति,परोपकार, मातृभाषा के प्रति प्रेम, समाज–सुधार, पराधीनता के बंधन से मुक्ति की चाह के रूप में प्रस्फुटित हुई। भारत एक ब्रिटिश उपनिवेश था किन्तु भारत का कोई उपनिवेश नहीं था, फलस्वरुप राष्ट्रवाद के अतिवादी रूप ने अल्पसंख्यकों (मुसलमान और ईसाई), दलितों और आदिवासियों को निशाना बनाया। परंपरा और संस्कृति रक्षा के प्रति अतिभावुक विचार ने उन्हें सही गलत की सीमा का भान ही न रहने दिया। इसलिए वे महिलाओं के मुद्दे पर भी वही पुरातनपंथी रूप जाहिर करते हैं।

## मूल आलेख

19वीं सदी में राष्ट्रवाद की अवधारणा ने अतीत में अपनी जड़ों की तलाश करने के विचार पर जोर दिया। इस तलाश का मुख्य उद्देश्य परंपरा और संस्कृति के प्रति प्रेम दर्शाना मात्र नहीं था अपितु अपने को इस भारतभूमि का 'असली वारिश' घोषित करना भी था। अतीत के स्वर्ण युग की चर्चा इस दौर की राष्ट्रीय राजनीति और साहित्य के केन्द्र में थी। स्वामी दयानंद सरस्वती ने भी 'वेदों की ओर लौटने' का नारा दिया। हिन्दी निबंधकार बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र भी 'अतीत के स्वर्ण युग' के मोहपाश में पूरी तरह जकड़े हुए नजर आते हैं।

बालकृष्ण भट्ट 'भारत का त्रिकाल' शीर्षक निबंध में लिखते हैं कि ''भूत भारत का कैसा था यह किसी से छिपा नहीं है धरती सोने फूल फूली थी सब ओर अमन चौन था घर–घर आनंद बधाई बज रही थी, किसी को किसी बात की कमी नहीं थी।.. जहां मणिमुक्ता प्रवाल का कंकर–पत्थर के समान ढ़ेर था..... उस समय ब्राह्मण तीनों वर्ण के लोगों को अपनी मूटठी में किए थे, किसी की सामर्थ्य नहीं थी कि इनसे आंख मिला सके। अब इस समय बनिया बक्काल भी ब्राह्मण बना चाहते हैं और काछी कुनबी क्षत्री।.....पहले घर–घर ब्राह्मणों के वेदपाठ की कलरव ध्वनि स्थान स्थान में गुंजा करती थी। अब मियां लोगों के बांग देने का कठोर शब्द और गिरजाघर के घंटाओं का घोर नाद कानों की चौलिया झारता है ।..... हम आर्य है, धन्य हमें जो भारत की पुण्यभूमि में जन्में है, ऐसा कहते हम अपना भाग्य सराहते थे वहीं अब हमें शर्म आती है।'' उक्त कथन के माध्यम से भट्ट जी वर्णव्यवस्था में ब्राह्मण की सर्वोच्चता के साथ पदसोपान व्यवस्था को जायज ठहराते है। ब्राह्मणों का खत्म होता वर्चस्व उन्हें मान्य नहीं । इतिहासकार डी. डी. कौशाम्बी भौतिक उत्पादन की पद्धति, समाज के वर्गीय ढ़ाचे और संसाधनों के विकास को समझाते हुए निष्कर्ष निकालते हैं कि "अगर कोई स्वर्णकाल जैसी चीज है तो वह अतीत में नहीं बल्कि भविष्य में मौजूद है।" अपने एक अन्य निबंध 'देशरक्षा का उपाय' में बालकृष्ण भट्ट लिखते हैं–''देशानुराग प्राचीन समय में आज की तुलना बहुत अधिक था। जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि यहां के लोगों में देशत्व की मात्रा क्यों घट गई, तब हमको देशानुराग की कुंजी यथार्थ–विद्या का अभाव होना मालूम पड़ता है।...बालकों को बाल्यावस्था ही से उनके मन में बैठाया जाता है कि आर्य लोग वास्तव में यहां के असली पुराने वाशिंदे न थे, वरन कहीं बाहर से आकर यहां बस गये थे। स्वदेशाभिमान को नष्ट कर देने की कैसी अच्छी युक्ति है, पर यह युक्ति सर्वथा निर्मूल और भ्रान्त है।'' प्रतापनारायण मिश्र भी बालकृष्ण भट्ट से मिलता जुलता विचार प्रकट करते हैं–''जिन विदेशी इतिहास लेखकों का मत है कि आर्य जाति यहां की सनातन निवासनी नहीं है वरंच आदि में ईरान अथवा अन्य किसी देश से आकर और यहां के प्राचीन निवासियों को हरा के अपना प्रभुत्व जमाया था तथा अपना घर बनाया था, उनका कथन तो हमारी समझ में नहीं आता।'' इस दावे को नकारते हुए वे लिखते है–''हिन्दुस्तान सदा हिंन्दुओं का है और हिन्दू यदि किसी दूसरे देश से आये हुए होते तो उनके प्राचीन ग्रंथों में उस देश का कुछ विवरण होता।'' इस तरह मिश्रजी आर्य और हिन्दू को समानार्थी बना देते है। वे एक झटके में हिन्दुओं के इतिहास में होने वाले विभिन्न चरणों के विकासक्रम को ही नहीं नकारते, अपितु हिन्दुओं में विभिन्न सम्प्रदायों और उपासना पद्धितियों के इतिहास को भी ठेंगा दिखा देते है। ब्राह्मणों–शूद्रों के जातिगत आत्मसंघर्ष और आर्य–द्रविड़ सभ्यता का द्वन्द्व मिश्रजी की नजरों से ओझल हो जाता है। इसकी वजह इतिहास–दृष्टि का अभाव मात्र नहीं है। यह इतिहास को एक खास नजरिये से देखने का नतीजा है जिसके आधार पर मिश्रजी घोषणा करते हैं– ''हम हिन्दू है और यह देश हमारा स्थान है। यह भारत है और हम यहां के मुख्य निवासी है। दूसरे लोग गौण रूप से भारतीय कहलावें पर मुख्य भारतीय हमीं है। हमारी ही उन्नति–अवनति का नाम भारत की उन्नति–अवनति है और रहेगा ।'' उक्त पंक्तियों से न केवल नवजागरणकालीन लेखकों की कल्पना से निर्मित हो रहे राष्ट्र की छवि उजागर हो रही है अपितु आज के समय में जारी राष्ट्रीयता के विमर्श की पृष्ठभूमि भी समझ आ रही है।

बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने इस्लाम और ईसाई धर्म से मुकाबले हेतु जिस संगठित हिन्दू धर्म की छवि का निर्माण किया, उसने उन्हें नास्तिक और प्रश्नाकुल चेतना का कट्टर विरोधी बना दिया। इसलिए जब स्वामी दयानंद सरस्वती 1869 ई. में काशी के सनातनधर्मी पंड़ितों से मूर्तिपूजा और पौराणिक ग्रंथों पर बहस कर रहे थे तो बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र नें स्वामी दयानंद सरस्वती को जबाव में वेद और पुराणों का खुलकर पक्ष लिया। बालकृष्ण भट्ट ने 'वेद क्या है' शीर्षक निबंध में लिखा कि "हमारे धर्म का मूल वेद है। राष्ट्रीयता का तो वेद आधार है। जब तक हम वैदिक पथ का अनुसरण करते रहे हिन्दू जाति बराबर प्रबल रही ।... आर्य संज्ञा तो तब हुई जब संसार में बहुत से मनुष्य सब ओर फैल गए तब जिनका उत्तम आचरण रहा वे आर्य हुए और जो निकृष्ट कामों में लगे वे मलेच्छ, असुर, दस्यु आदि नाम से कहलाये।" बालकृष्ण भट्ट की आचरण आधारित यह आर्य अवधारणा चली नही। वस्तुतः 19वीं सदी में हिन्दू वर्णव्यवस्था के प्रश्न इतने जटिल तरीके से सामने आ रहे थे कि उनके आगे प्राचीन आर्य सभ्यता के दावे असंगत नजर आने लगे।

एक ओर जहां हिन्दी नवजागरण के सवर्ण लेखकों को भारत का स्वर्णकाल मुसलमानों के आने से पहले 'आर्य–हिन्दू' सभ्यता में नजर आ रहा था, तो वहीं महान समाज सुधारक ज्योतिबाराव फूले के लिए शूद्रों का स्वर्णकाल उसी समय खत्म हो गया था, जब आक्रमणकारी आर्यों ने यहां के लोगों को गुलाम बनाया। गुलामगिरी पुस्तक के अंतर्गत वे लिखते हैं कि–"आर्यों ने यहां के मूलनिवासियों को गुलाम बनाया और उन्हें उनकी जमीन से बेदखल कर दिया। इन लोगों के खिलाफ शूद्र, महार, अंत्यज और चांडाल जैसे बेइज्जत करने वाले संबोधनों का इस्तेमाल किया जाने लगा।" ज्योतिबा फुले के अनुसार भारत के मूलनिवासी आदिवासी थे, जिसमें शूद्र, अतिशूद्र और अछूत भी शामिल थे।

प्रतापनारायण मिश्र ने दयानंद सरस्वती को इंगित करते हुए अपने आलेख 'पुराण समझने को समझ चाहिए' में लिखा कि "विचार कर देखिए तो यह भी देश का बड़ा भारी दुर्भाग्य है कि पढ़े लिखे लोग ऐसा अनर्थ कर रहे हैं....सर्कार में हमें स्वतंत्रता क्या इसलिए दी है कि हम ढिठाई सहित अपनी मूर्खता का पक्ष करके देशभाइयों की बुद्धि को भ्रष्ट करें ।" उनका रोष यहां तक भी खत्म नहीं होता, वे आगे लिखते हैं कि "परमेश्वर यदि नितान्त दयालु हों तो उन जिह्वाओं और हाथों को भस्म कर दें जिनके द्वारा सभाओं में बका और कागजों पर लिखा जाता है कि वेद जंगलियों के गीत है, पुराण पोपों के जाल है, इतिहास का कोई ठिकाना नहीं है, काव्य में निरी झूठ और असभ्यता ही होती है, इत्यादि ।" वे ऐसे लोगों के सामाजिक बहिष्कार की वकालत ही नहीं करते है, अपितु उन्हें 'दंतत्रोटक उत्तर' देने के लिए भी लालायित रहते हैं– ''यदि हमारा सा सिद्धान्त रखने वाले सहस्त्र दो सहस्त्र लोग भी होते तो ऐसों की बात बात का दंतत्रोटक उत्तर प्रतिदिन देते रहते ।" नवजागरण की उक्त शैली क्या वाकई साहित्यकारों की शैली है!

'पौराणिक गूढ़ार्थ' नामक निबंध में पुराणों और अन्य हिन्दू धर्मशास्त्रों का पक्ष लेते हुए प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं कि "पुराण यदि सचमुच दूषित हों, तो भी हमारे आदरणीय पूर्वजों के बनाए हुए है अतः माननीय है ।" यहाँ मामला सिर्फ पुरखों के सम्मान मात्र का नहीं है यह शुद्ध भौतिकतावादी है । इसी निबंध में वे आगे लिखते है "जिन्हें विचार शक्ति से तनिक भी काम लेना मंजूर न हो, उन्हें भी यह समझ के पुराणों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए कि सैंकड़ो ब्राह्मण भाइयों की गृहस्थी उन्हीं से चलती है ।" शायद इसी दर्शन का प्रभाव है जो उन्हें लिखने को बाध्य करता है कि–"हमारी समझ में यदि ऐसे लोगों को, जो सभाओं में बैठ के तथा मेलों और बाजारों में खडे हो के, किसी के मत पर आक्षेप करते है, सर्कार की ओर से दंड नियत हो जाए तो अति उत्तम है ।"

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' नामक पुस्तक में तदयुगीन मध्यम हिन्दू वर्ग की विचारधारा का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि –'नवोत्थानकालीन होने के कारण इस वर्ग की राजनीतिक विचारधारा में राष्ट्रीयता बहुत कुछ हिन्दुत्व को लिए हुए थी और 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान' इसके मुख्य शब्द थे ।' इसलिए यह वर्ग मध्यकालीन इतिहास की व्याख्या करते समय मुसलमानों को हिन्दुओं का विरोधी बताता है और साथ ही अपने को प्रताड़ित धार्मिक समुदाय के रूप में चिन्हित करता है । इस विचारधारा के लोग यह मानकर चलते है कि मुसलमान ही है, जो अपने सामाजिक आचरण और खानपान की आदतों के चलते उन्हें तंग करते है । प्रताप नारायण मिश्र लिखते हैं– "हिन्दुस्तान में मुसलमानों की संख्या थोड़ी, धन थोड़ा, विद्या थोड़ी, फिर क्यों वे गाय मार डाले, हम अपने ठाकुर न निकाल पावें, हमारे देवताओं और ऋषियों को निर्लज्ज गाली बकैं, हम उनकी किताबों के अनुसार सीधा जबाव भी न दे सकें ।"

प्रो. वीरभारत तलवार का मानना है कि 'हिन्दी नवजागरण' हिन्दू जागृति और मुसलमान विरोध से जुडा हुआ था । वे हिन्दी नवजागरण की शुरूआत 1868 ई. में राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद के नेतृत्व में अंग्रेजी शासन को दिए गये उस मेमोरेण्डम से मानते है जिसमें लिखा था कि–"वह दिन अभिशापपूर्ण था जब मुसलमान इस देश में आए । आज हमारे बीच जितनी भी बुराईयाँ है, वह इन्हीं 'प्रिय मुसलमान भाईयों' की बदौलत है ।" हिन्दू लेखकों द्वारा इस्लाम के हमले की वजह से हिंदू संस्कृति के पतन के जो ऐतिहासिक प्रमाण पेश किए जा रहे थे, उनके पीछे यह तर्क भी अंतर्निहित होता था कि 'अगर विदेशी हमलावर यहाँ नहीं आए होते, तो हिन्दू सभ्यता का बाल भी बांका न होता । ऐसे में उन्होंने अपनी प्राचीनता सिद्ध करने का प्रयास भी किया, क्योंकि अगर आर्यों को भी विदेशी हमलावर मान लिया जाता तो इस्लाम की आक्रमणकारी छवि होने का आरोप भी बेदम और निराधार हो जाता । ऐसी स्थिति में आम धारणा यह होती कि जब आर्यों ने भी यहां के मूलनिवासियों को परास्त कर शासन स्थापित किया है तो मुसलमानों ने भी वही प्रक्रिया अपना के कौनसा गुनाह कर दिया ।'

1857 ई. की क्रान्ति में हिन्दू–मुस्लिम दोनों समुदायों ने कंधे से कंधा मिलाकर संगठित होकर अंग्रजों का मुकाबला किया था । बालकृष्ण भट्ट ने 'भारत का भावी परिणाम क्या होगा' निबंध में मुस्लिम राज को अंग्रेजी शासन से बेहतर बताते हुए लिखा, कि "परिश्रम के फलस्वरूप जो धन उपजता था वह सारा यहां ही रह जाता था, उसका एक कण भी बाहर नहीं जाता था ।" वे आगे लिखते है "हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर एक तन हो गए, कि वे तनों में सहोदर का सा प्रेम हो गया और इनके चाल–चलन, रीति–त्यौहार भी दोनों की एक सी हो गयी ।" उक्त–पंक्तियों के माध्यम से भट्टजी हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल देकर आपसी सामंजस्यपूर्ण सहजीवन की भावना में विश्वास प्रकट करते दिखाई देते हैं, पर हिन्दी प्रदीप की अनेक पंक्तियाँ यह दिखाती है कि वे हिन्दू–मुस्लिम एकता का पक्ष रखने की जगह हिन्दुओं के मान सम्मान के लिए ब्रिटिश शासन पर ज्यादा भरोसा करते थे । 'हिंदू जाति का स्वभाविक गुण' शीर्षक निबंध में वे लिखते हैं "...हमारे सामयिक शासनकर्ता हर तरह पर बुद्धिमान होकर भी न जाने क्या कारण है कि सौ वर्ष से उपर इनको यहां राज करते बीत गया, सब भांत इनकी परख भी न जाने कै बार कर चुके और पूरी तरह से इन्हें राजभक्त पाया, तो भी इन्हें पहचान न सके ।... अस्तु ये अपने काम में त्रुटी करते हैं करें, पर हम अपने कर्तव्य से न चूकेंगे ।"

अपने को सबसे बडा राजभक्त साबित करना और दूसरे को खलनायक घोषित करना इन अतिवादी राष्ट्रवादियों की नीति रही है । इसका दिलचस्प उदाहरण ये है कि जब सरकार के सामने मुसलमानों का पक्ष रखने के लिए गठित संस्था 'नेशनल मोह्मडन्स एसोसिएशन' के सेक्रेटरी सैयद अमीर अली ने 1881 ई. में एसोसिएशन की पत्रिका 'नाइनटीन्थ सेंचुरी' में 'ए क्राई फ्रॉम द इंडियन मोह्मडन्स' नामक लेख में ब्रिटिश सरकार से मुसलमानों के साथ भेदभाव खत्म करने और उनकी दशा सुधारने की अपील की, तो इन नेताओं को बालकृष्ण भट्ट ने औरंगजेब की संज्ञा देते हुए लिखा कि– "इस शांत ब्रिटिश राज में बहुत दिनों बाद ये नए औरंगजेब उपज खडे हुए है, सरकार को उचित है ऐसे लोगों को जल्द तदारुक करै, नहीं तो ये मुसलमानों को उभाड़–उभाड़ कर कोई फसाद बहुत जल्द बरपा देंगे ।"

औपनिवेशिक दौर में ब्रिटिश शासन व्यवस्था ने समस्त मुद्दों को साम्प्रदायिक रंग देते हुए हिन्दू–मुसलमान में बांटकर देखने की अपनी राजनीति जारी रखी । नवजागरणकाल के लेखकों पर इसका प्रभाव पड़ना ही था । अपनी हर बुराई के लिए मुसलमानों और अंग्रेजी शिक्षा को दोषी ठहराये जाने में अतिवादी राष्ट्रवाद बहुत हद तक जिम्मेदार था । बालकृष्ण भट्ट ने अपने निबंध 'हिंदू जाति का स्वभाविक गुण' में लिखा, कि "यवनों का अधिक सन्निकट और सम्पर्क से हिन्दू अपने बहुत से उत्कृष्ट सात्विक गुण खो बैठे ।...मुसलमानों के अधिक सम्पर्क से उनकी सी भोगलिप्सा हमारे में बढ़ गई, न जानिये कितने हिंदू यवनी के प्रेम में आसक्त हो, अपने बाप दादा का छोड़ खुलाखुली मुसलमान हो गए ।" वे आगे लिखते हैं कि "...अस्तु जो हो, यह देख कर थोड़ा संतोष अवश्य होता है कि सम्पूर्ण आबादी का छटवां हिस्सा अब तक यहां ऐसा है जिसमें शुद्ध आर्यक्रम अब भी पाया जाता है, अहोभाग्य यदि अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव न हो इतना ही बना रहे ।" धातव्य रहे शुद्ध आर्य क्रम की यह अवधारणा हिटलर के फासीवादी विचार का आधार बिन्दू था और आज के अतिवादी राष्ट्रवाद का मुख्य ईधन ।

'वेद क्या है' निबध में भट्ट जी लिखते है "मुसलमानों के विजयी होने पर जब से हिंदू जाति अपनी स्वतंत्रता खो बैठी तब से इनकी असाधारण शक्ति तथा शौर्य, वीर्य आदि उदार गुणों के स्त्रोत पर डाट सी लगा दी गई ।" वे एक अन्य निबंध 'महाभारत के समय का भारत' में न सिर्फ मुसलमानों को हिन्दुओं के पतन के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं, अपितु उस दौर के हर प्रकार के साहित्य और रीति–नीति को त्याज्य मानते है–"मुसलमानों के राजत्व काल में जो ग्रंथ बने अथवा जो रीति या क्रम अपने लोगों में प्रचलित किया गया, सब त्याज्य है । उन ग्रंथों को मानने या उन रीति या क्रम के अनुसार चलने से हम स्वराज्य के योग्य कभी नहीं होंगे ।"

हिन्दी भाषा ही नहीं, भक्ति साहित्य की कृष्ण भक्तिधारा में श्रंगार रस के प्रयोग के लिए भी बालकृष्ण भट्ट मुसलमानों की भोग प्रवृति को जिम्मेदार ठहराते है और ऐसा करते समय मुसलमानों के आधिपत्य से पूर्व जयदेव के 'गीत गोविन्द' और विद्यापति की पदावली' में चली आ रही कृष्णभक्ति की श्रृंगारिक परंपरा को विस्मृत कर देते है । जैसाकि बालकृष्ण भट्ट 'हमारा दास्य भाव' निबंध में लिखते हैं–"भक्तिमार्ग का प्रादुर्भाव तब हुआ जब देश में सब ओर मुसलमानों की हुकूमत अच्छी तरह जम गई थी और आर्य जाति अपनी वीरता से च्युत हो चुकी थी । मुसलमानों का सम्पर्क पाय उनकी सी भोगलिप्सा इनके मन में स्थान पा चुकी थी । श्रृंगार में सनी इसी भक्ति ने योगिराज हमारे कृष्ण भगवान को अत्यंत विलासी और रहस्यप्रिय बना दिया था ।" उक्त पंक्तियों के द्वारा वे बड़ी चतुरता के साथ मुसलमानों से पूर्व के निवासियों को आर्य घाषित कर देते है और मुसलमानों को आसानी से विदेशी हमलावर की श्रेणी में रख देते हैं ।

भाषा का सवाल नवजागरण काल का केन्द्रीय सवाल था । सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी/हिन्दुस्तानी के प्रयोग को मान्यता दी गई । स्वामी दयानंद सरस्वती मूलतः गुजराती होने पर भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिन्दी में करते है, परन्तु उनमें कहीं भी दूसरी भाषाओं के प्रति विरोध की भावना

नहीं दिखाई देती । पर यह आश्चर्य की बात है कि हिन्दी के ये निबंधकार जब हिन्दी भाषा के पक्ष में खड़े होते है तो अनायास ही उर्दू और मुसलमानों के विरोध में खड़े हो जाते है । प्रतापनारायण मिश्र 'रसिक समाज' शीर्षक निबंध में हिन्दी भाषा के समर्थन में लिखते है कि "भाषा की उन्नति के बिना देश की उन्नति सर्वथा असम्भव है और हमारी भाषा हिन्दी है तथा हिन्दी इस बात में अन्य भाषाओं से अधिक श्रेष्ठ है कि एक ही रूप से गद्य और पद्य दोनों का काम नहीं चलाती । गद्य के मैदान में अनवरुद्ध गति से तीक्ष्ण खड्ग की भांति और पद्य की रंगभूमि में मनोहारिणी चाल से नाट्यकुशला सुन्दरी की नाईं चलने की सामर्थ्य रखती है ।" उक्त पंक्तियों के माध्यम से मिश्रजी हिन्दी की जिन विशेषताओं का उल्लेख करते हैं कोई भी पाठक उनके इस विचार से असहमत नहीं होगा । पर जब वे इसे साम्प्रदायिक रूप देकर उर्दू को मुसलमानों और हिन्दी को हिन्दुओं से जोडकर देखते हैं, तो उनके भाषायी विचार संकीर्ण नजर आते है ।

प्रतापनारायण मिश्र अपने आलेख 'हिम्मत रखो एक दिन नागरी का प्रचार होगा' में लिखते हैं–"यदि हमारे आर्य भाई अधीर न होंगे तो एक दिन अवश्य होगा कि भारतवर्ष भर में नागरी देवी अखण्ड राज करेंगी और उर्दू देवी अपने सगों के घर में बैठी कोदौं दरैगी ।.....यदि सच्चे हिन्दू हों, यदि सचमुच हिन्दी चाहते हों तो मन लगा के हिन्दू समाज प्रयाग की अमृतवाणी सुनैं तो सही ।" इस प्रकार वे हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को आर्य हिन्दुओं से जोड़कर भाषा को साम्प्रदायिक रंग दे देते है । एक अन्य निबंध 'उरदू बीबी की पूंजी' में उर्दू भाषा की दीन–हीन स्थिति पर व्यंग्य करते हुए प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं–"यदि और कोई विद्या का विषय लिखना हो तो संस्कृत, बांग़ला, नागरी, अरबी, फारसी, अंगरेजी की शरण लीजिए । इन बीबी के यहां अधिक गुंजायश नहीं है । ... सत्य विद्या के बतलाइये तौ कै ग्रंथ है? हाय न जाने देश का दुर्भाग्य कब मिटेगा कि राजा–प्रजा दोनों इस मुलम्में को फेंक के सच्चे सोने को पहिचानेंगे । जानते सब है कि पूँजी इतनी मात्र है, पर प्रजा का अभाग्य, राजा की रीझ बूझ! और क्या कहा जाए ।"

बालकृष्ण भट्ट के भाषा संबंधी विचार भी प्रतापनारायण मिश्र के विचारों से मिलते जुलते है । 'भाषाओं का परिवर्तन' शीर्षक निबंध में वे लिखते हैं कि "विचार कर देखिए तो जो हिंदी आजकल हम बोलते हैं वह पहले क्या थी और अब क्या है । अब फारसी–उर्दू शब्द उसमें मिलते जाते हैं ।" "...मुसलमानों के अत्याचार का फल जैसा हम अपनी रीति–रस्म सामाजिक व्यवहार अपनी और अपने यहाँ की स्त्रियों की दशा सब में पाते हैं तब यह क्यों कर हो सकता है कि मुगलों की भाषा का असर हमारी भाषा में न हो ।" यहां भट्ट जी भाषाई परिवर्तन को मुगलों का अत्याचार घोषित कर साम्प्रदायिक रंग भरने का प्रयास करते हैं ।

## निष्कर्ष

हिन्दी नवजागरण के दौर में राष्ट्रवाद और भाषायी विमर्श पर बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र के विचारों का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि ये निबंधकार जहां कुछेक बातों में नितांत प्रगतिशील नजरिया रखते हैं, वहीं अधिकांश मामलों में अपनी धार्मिक प्रतिबद्धता जाहिर करते हैं । ये निबंधकार राष्ट्रवाद, और भाषा संबंधी विमर्श को धार्मिक–जातिवादी नजरिये से देखने के पक्षधर थे । आज के अतिवादी राष्ट्रवाद की नीव रखने का कार्य इन निबंधकारों ने किया था ।

## सन्दर्भ ग्रंथ सूची


1. http:@@www-hindisamay-com@content@1635@1@cky—".k&Hkê&fucaèk&Hkkjr&dk&f=dky-cspÛ
2. "The golden age] if any] lies in the future] not in the past-ß The Culture and Civilisation of Ancient India in Historical Outline: D- D- Kosambi] http:@@vidyaonline-org@dl@cultddk-pdf
3. http:@@www-hindisamay-com@content@4457@1@cky—".k&Hkê&fucaèk&ns'kRo&j{kk&dk&mik;-cspÛ
4. विजयशंकर मल्ल (सं.) प्रतापनारायण ग्रंथावली, काशी , पृ. 273
5. वही. पृ. 273
6. वही. पृ. 274
7. निर्मला जैन (सं.)रू निबंधों की दुनिया, बालकृष्ण भट्ट, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 95–97
8. http:@@www-hindisamay-com@Anuvad@gulamgiri-htm
9. निर्मला जैन (सं.)रू निबंधों की दुनिया, प्रतापनारायण मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ. 48
10. वही. पृ. 50
11. वही. पृ. 50
12. वही. पृ. 33
13. वही. पृ. 33
14. वही. पृ. 34
15. विजयशंकर मल्ल (सं.) प्रतापनारायण ग्रंथावली, काशी, पृ. 41
16. प्रो.वीरभारत तलवाररू रस्साकशी , सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 64
17. हिन्दी प्रदीप, सितंबर 1882, जिल्द 6, सं. 1
18. वही.
19. http:@@gadyakosh-org@gk@fganw&tkfr&dk&LokHkkfod&xq.k&@&cky—".k&Hkê
20. http:@@gadyakosh-org@gk@fganw&tkfr&dk&LokHkkfod&xq.k&@&cky—".k&Hkê
21. http:@@gadyakosh-org@gk@fganw&tkfr&dk&LokHkkfod&xq.k&@&cky—".k&Hkê
22. http:@@gadyakosh-org@gk@fganw&tkfr&dk&LokHkkfod&xq.k&@&cky—".k&Hkê
23. निर्मला जैन (सं.)रू निबंधों की दुनिया, बालकृष्ण भट्ट, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 98
24. वही. पृ. 117
25. http:@@gadyakosh-org@gk@gekjk&nkL;&Hkko&@&cky—".k&Hkê
26. निर्मला जैन (सं.)रू निबंधों की दुनिया, प्रतापनारायण मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ. 51
27. वही. पृ. 131
28. वही.पृ. 124
29. निर्मला जैन (सं.)रू निबंधों की दुनिया, बालकृष्ण भट्ट, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 59
30. वही. पृ. 60